ORIGINAL RESEARCH PAPER

Hindi

KEY WORDS:

ज्ञानरंजन की कहानियों का कथ्य

निशिम नागर एम.ए.हिन्दी, नेट–जे.आर.एफ.,बी.ए.,डी.एड. चतरगढ़ पट्टी ,सिरसा -125055

जिस दिन वह जाने का निश्चय कर लेता है उस दिन कहानी के 'मैं' को वह गर्वीली मुद्रा में सुनाता है, मैं जैसे बंदी ग्रह की यातना से रिहा होने जा रहा हूं। 'मैं' भी अपने परिवेश की जड़ तृप्ति से बेचैनी अनुभव करता है, उसमें भी एक शांत विस्फोट की आग सुलग रही है लेकिन वह अंधी दौड़ में शामिल नहीं होता, क्योंकि उसे लगता है कि सिर्फ भागने या अपनी ज़मीन छोड़ कर यायावार होने की जरूरत नहीं है। निःसंदेह नारी के प्रति सोई हुई दुनिया से भागने की उसकी उत्कंठा बहुत जायज है।

कहानीकार ज्ञानरंजन इन दो स्वतंत्र चेताओं की हरकतों और मार्गों के माध्यम से सही स्वतंत्रता के सही अर्थ को फोकस करना चाहता है–एक ही छटपटाहट शहरी दुनिया की आधुनिकता और स्वतंत्रता को पा लेने की है, दूसरे की उस स्वतंत्रता के अन्दरुनी झूठ को पर्दाफाश करने की। वह स्वतंत्र और मुक्त लोगों के बीच रहकर भी अपने को एक अजब दबाव से संत्रस्त पाता है, उसे यह सारी उन्मुक्तता आडम्बर और दिखावटी लगती है क्योंकि इसका सारा सुख, इसकी सारी सुविधाएं कई लोगों के सैंकड़ों अभावों और दर्द को पीकर फूले हुए लगते हैं।

कहानीकार ने बहुत गहराई से भारतीय स्थितियों और लोगों की उस झूठी प्रगतिशीलता को बयान किया है– जहाँ लोग अपने से बाहर की दुनिया को अधिक स्वतंत्र, उन्मुक्त और आकर्षक पाकर उसके पीछे भागते हैं जबकि नज़दीक से वह स्वतंत्रता की हसरत, वे राष्ट्रीय चिंताएं, सामाजिक दर्द और आम आदमी को ऊपर उठाने की सुधारवादी मुद्रा एकदम खोखली होती है क्योंकि केंद्रीय चीज होती है आत्म सुख, स्वार्थ और आत्मभोग की लपलपाती हुई आग जिसमें ईमानदारी झुलस जाती है और स्वतंत्रता पाने और दिलवाने के सारे दम्म, सारे प्रयत्न काले हो जाते हैं। 'मैं' इस सबको समझता है' असलियत यह है कि 'ये सभी लोग छाती में हाय मानवता का दर्द और मुंह में लोकतंत्र की चुसनी लिए थे।

तथाकथित प्रगतिशील और स्वतंत्रताओं की हिमायती दुनिया किस कदर स्वार्थी, शोशक और खोखली है– कहानीकार इसे 'मैं' के तनाव और इस स्थितियों को चीर कर रख देने और लोगों को इनके झूठे आकर्षण से मुक्ति दिलाने की तड़प से गुजारकर दिखाता है। 'ये सब लोग स्वतंत्र थे और इन्होंने लड़ाई झगड़े को माफ कर दिया था। कदम–कदम पर ऐसा संगीत प्रसारित होता मिलता कि आश्चर्य होता था, आसपास पौधे–कैसे जीवित हैं और खिड़कियों के कांच क्यों नहीं चटक गए हैं, जाहिर है मैं इस संगीत के झूठ को समझता है और उसके दुख इस बात का है कि लोग क्यों नहीं समझते हैं?

वस्तुतः रचना के स्तर पर कहानीकार का स्वतंत्रता बोध पूरी तत्परता के साथ, स्वतंत्रयोत्तर भारत की स्वतंत्रता, आज़ादी और मुक्तता के भीतरी खोखलेपन को उघाड़ देने पर तुला है, उसका यह बोध कहानी के 'मैं' की छटपटाहट में डूबकर उतरा है, उन लोगों के खिलाफ जो देश और समाज के अज्ञानी और भोले लोगों की मुक्ति का नारा लगाते हुए अपने सुखों और स्वार्थों को तराशने में लगे हैं।

हम कस्बों, यानी रूढ़ियों, परम्पराओं और पिछड़ेपन से मुक्ति पाने की खातिर प्रगतिशीलता और स्वतंत्रताओं की दुनिया में भागना चाहते हैं– लेकिन क्या हम स्वतंत्रता हासिल कर पाते हैं, मुक्त हो पाते हैं– स्वतंत्रता कहां है? वास्तविक आजादी कहां है? जहां हमें दूसरों को स्वतंत्रता भोगते हुए देखकर प्रेरणा न मिले बल्कि वितृष्णा हो–और यह अनुभव हो कि यह स्वतंत्रता दूसरों की जिन्दगियों के मूल्य पर है, यह स्वतंत्रता कुछ ही लोगों की है, वह भी वास्तविक और ईमानदार नहीं–सरासर झूठी ढोंगी और मक्कार। स्वतंत्र लोगों की दूसरों की स्वतंत्रता दिलाने की चिंताएं भी महज प्रतिष्ठित होने की और अपने को समाज पर हावी करने की नीच मनोवृत्ति से प्रेरित है।

ज्ञानरंजन व्यंग्य की तीखी धार के साथ भारतीय लोकतंत्र का पर्दाफाश करते हैं। सच यह है कि स्वतंत्रता बोध आदमी को सही और गलत के बीच की दूरी और अंतर का अहसास कराता है और उसे चेतना देता है कि वह उस गलत का विद्रोह कर सके–कम से कम स्वयं को उस गलत में शामिल होने से ही बचा सके। कहानी का 'मैं' कहानीकार के इसी स्वतंत्रता–बौध को जीता हुआ देश में आजादी और लोकतंत्रात्मक व्यवस्था को देखकर दुखी और उत्तेजित महसूस करता है, लेकिन उस जैसे लोग बहुत थोड़े हैं ज्यादा लोग उसी व्यवस्था, उसी मोहक आजादी के हिमायती हैं और उनमें भ्रमों को तोड़ने की हिम्मत नहीं है।

मनोहर के ही जैसे एक व्यक्ति सोमदत्त है जो ऊपर से उतना ही बेदाग और शरीफ लगता है जितना कि कोई राजकुमार। कहानी का 'मैं' सोचता है' वह कौनसा जीवन नुस्खा है इसके पास जिसने इसके सभी दुख मार दिए हैं और यह सफलता की गर्द को स्वाद से चाट रहा है। 'मैं' चाहता है लोगों में सही–स्वतंत्रता बोध की सनसनाहट उठे लेकिन वह दुखी होते हुए देखता है कि लोग ढीठ सुख और खुमारी की नींद सोए हुए हैं और अपने दुखों के, अन्यायों के खिलाफ लड़ने की चेतना ही उनमें पैदा नहीं होती।

मनोहर अपने देश की असलियत को पहचान गया है और अब यहां से निकलने की छटपटाहट में बेचैन हो रहा है, यहां ठीक खाना नहीं मिलता, भूखे को सम्मान नहीं मिलता, रहने को मकान नहीं है और शोभा और समय के लिए स्त्री नहीं मिलती... इस देश में रहकर बताओ तो समझूं तुम; जू' में रह सकते हो लेकिन इस देश में नहीं।

कहानी का 'मैं' जब भी इन तथाकथित महान लोगों के सम्पर्क में आता है उसे याद ही नहीं पड़ता कि वह भी देश का एक हिस्सा है। इस स्वतंत्र देश में आम आदमी की आजादी का क्या रूप है? इस स्वतंत्रता ने देश के आम आदमी को क्या दिया है–यह अहसास कि उन दोगले लोगों, महान उद्देश्यों के लिए लड़ाई लड़ने का दम भरने वालों के सामने वह (जो असली लड़ाई, असली दर्द, जीवन में जहर घोल देने वाले हलाहल को भुगत रहा है, पी रहा है) कुछ नहीं है, 'मैं वहां मनुष्य नहीं रह गया था। इस देश की कुत्ती जनता का एक नुमाइंदा था। त्रासदी यह है कि यहां सुधार की कोइ गुंजाइश नहीं है, 'मैं' उन लोगों को ऐश्वर्य और ऐश के ढेर के बीच बीयर पान करते देख अंदर ही अंदर सुलग उठता है– 'यह वह नशा है जो पिछड़े हुए दकियानूस और साजिशपूर्ण अर्थ व्यवस्था वाले भुखमरे हिंदुस्तान में उनकी रचना कर रहा था। लेकिन यह सुलग उस सुनहले वातावरण की आंच के सामने चिंगारी भर है जो थोड़ी देर के लिए बेईमान होने लगती है– उसे लगता है, उसमें भी उन्हीं लोगों की कतार में षामिल हो जाने का लालच लहरे मार रहा है।

सोमदत्त अपने विदेश का एक संस्मरण सुनाता है जब आधी रात को पत्नी के पास पहुंचने पर पत्नी ने उसे लड़की का पता देकर घर से बाहर कर दिया और वह रात भर सड़कों पर शराब के सहारे चलता रहा सोचता रहा, मुझे केवल एक ही शब्द समझ में आया, आजादी। दिस इज़ फ्रीडम। एक दुर्लभ आजादी। उस आजादी के परिप्रेक्ष्य में सोमदत्त को भारत की आज़ादी पर हंसी आती है। मैं यहां बार–बार आता हूं पर यहां की भूमि यहां के आकाष का मेरे लिए क्या मतलब रह गया है..... उस आजादी के बिना क्या कहीं रहा जा सकता है? जहां तक तुम लोगों का प्रश्न है तुम्हारी इस आजादी से कभी मुठभेड़ नहीं हुई इसलिए अपनी गुलामी तुम्हें कभी नागवार नहीं लगेगी।

वास्तव में सोमदत्त मनोहर को वैसे ही समुद्र पार की दुनिया की आजादी के किस्से सुनाकर आकौत कर रहा है जैसे मनोहर ने अपने कस्बे के लोगों को किया था, शहर की प्रगतिशीलता के नाम पर। कहानीकार व्यंग्य की पुरजोर चुमन के साथ मनोहर और सोमदत्त जैसे लोगों की अंदरुनी कार्यवाहियों को खोलता है इन महानुभावों में आखिर आपत्तिजनक क्या है? ये बुरी चीजों के विरूद्ध है, क्रांति के लिए इन्होंने अपना दस्तखत अग्रिम सौंप रखा है फिर मेरे दिमाग में इनका उल्लू क्यों खिंचा जा रहा है। 'मैं' सोचता है– इन लोगों के कार्य इतने महान लगते हैं फिर भी वह अपने अंदर से उनका समर्थन क्यों नहीं कर पा रहा है? मनोहर में सोमदत्त ने बाहर की आजादी की जो आग सुलगा दी है, उसने उसे बेतरह बेचैन कर दिया है– वह अब यहां नहीं रहना चाहता, यह सूअर और गधों का देश है– अब यहां जीवन की गुंजाइश नहीं। उसके अन्दर अब विदेशी आज़ादी का भूत नाच रहा है– प्रेमिका से जुड़े रहना एक पालतूपन जैसी बेवकूफी लगता है–उसे नीत्शों के वाक्य याद आते हैं– स्त्री तुम मित्रता के आयोग्य हो। तुम बिल्ली और चिड़िया हो, अधिक से अधिक एक गाय हो।' मनोहर प्रेमिका सुधा को ठोकर मारने के बाद बाहर जाने के जोश में उन्मादी हो गया– वह दो– तीन लोगों के समूह को सम्बोधित करने लगा। वह क्रुद हो कर उन्हें समाज के लिए ललकार रहा था। उसमें एक आज़ाद जानवर की खुर्राती हुई ताकत आ गई थी– 'यहां रहना अपने को' किल' करना है, यहां जीवन में कविता नहीं है, बस शोर, गर्द, भीड़, घरेलू औरतें और शक्की मर्द हैं। मनोहर घरेलू औरतों की अपेक्षा मुक्त और अपने प्रेमी–पुरूषों को बंदूक की गोली से उड़ा देने वाली औरतों की तरफ खिंच रहा है।

मनोहर का यह बहिर्गमन आजादी को समझे बिना उसकी दौड़ में शामिल होने के लिए है। उसके लिए आजादी पहले, कस्बे के दकियानूस संसार से भागकर शहरी मुक्त जीवन जीने का नाम था और अब सूअर और गधों के देश से निकलकर समुद्र पार की आजाद दुनिया में शामिल होना है।

कहानी का 'मैं' समझता है, मनोहर की यह दौड़, धुँआधार प्रगतिशीलता के मोह में यह पलायन, यह बहिर्गमन सरासर एक ऐसी प्रवंचना है जो कभी मनोहर को सही तौर पर आजाद आदमी का सुकून नहीं देगी क्योंकि तथाकथित आजाद लोगों की

सुविधाओं ने उसकी समझ को सम्मोहित कर लिया था और उसने समझा ही नहीं कि आजादी को हासिल करने के लिए ईमानदारी पहली शर्त है और स्वार्थीपन से मुक्ति दूसरी। उस आजादी का कोई मतलब नहीं है जो लोगों को छलकर अपने सुख का जशन मनाना चाहती है। मैं अपनी निजी और बुद्धिविहीन हालत में घिरा हुए एक नौजवान आदमी के इस अंत का समारोह नहीं मना सकता था।

'फेंस के इधर और उधर' कहानी–संग्रह में संकलित कहानियों में ज्ञानरंजन स्वतंत्रता के अपेक्षाकृत वैयक्तिक आयामों को उभारते हैं। 'कलह' कहानी में, स्वाति घर की तनाव भरी बोझिल हवा से परेशान है, परिवार में बढ़ते जा रहे तनाव, अल–गाव से घबराती है, मन ही मन उफनती है, उसकी उम्र है रोमानी सपनों में तैरने की। वह इस जिंदगी के सन्दर्भ में आगे वाली जिन्दगी के बारे में सोचती है और कभी भावुकता में बहने लगती है कभी सिहर उठती है– यही होता है, पति–पत्नी का प्यार। लेखक स्वाति की इस तकलीफ को उसके अन्तर्द्वन्द्व को महत्व देता है और आधुनिक जीवन में, घरों में, सम्बन्धों में बढ़ते अजनबीपन और घुलते हुए कसैलेपन से प्रभावित, परेशान होते बच्चों से व्यापक स्तर पर स्वाति की मानसिक यातना को जोड़ता है। स्वाति का पढ़ना–लिखना, उसका प्रेम और उसका गुलज़ार घर घुंघुआ रहा है, जल जायेगा अजीब बला है।

वह क्या सोचे और क्या नहीं। स्वाति मानसिक दबाव और तनाव से संत्रस्त है, वह लगातार सोचती है इतना कि उसके दिमाग के रेशे बुरी तरह जकड़ जाते हैं। वह मुक्त होना चाहती है इस मानसिक घुटन से, वह मुक्त करना चाहती है, अपने भाई–बहनों को, अपनी मां को इस अधर में लटकी बोझिल स्थिति से। वह किसी भी तरह मां की उदास सूरत को सहज बना देना चाहती है, उसे घबराहट होती है, घुटन होती है मन ही मन एक जहरीला धुआं उमड़ता है– वह चीखना चाहती है, चिल्लाना चाहती है– घर की खामोशी को चूर–चूर कर देने के लिए। वह हमेशा यह सोचती है.. .. घर में जो कुछ चल रहा है, उसकी वह तटस्थ दर्शिका न बनी रहे, वरन् हिम्मत करके बीच में कूद पड़े या तो मध्यस्थता ही करा दे या साफ़ विद्रोह ही जन्म जाए। वह चाहती है यह दिल दहलाने वाला घर में फैला खिंचवा किसी भी तरह टूट जाए–उसे बीच में लटके रहने से नफरत होती है। यह नयी पीढ़ी का स्वतंत्रताबोध है जो स्थितियों के घिसटते रहने से नफरत करता है, वह एक निश्चिंत बिंदु, एक निर्णय पर पहुंचकर अपनी उलझनों का पर्दाफाश करना चाहता है– बिना मोहों की परवाह किए। संस्कारों से, पूर्वग्रहों से मुक्त होकर। स्वाति को घर का जीवन नागवार लगता है। वह शांति और अशांति के बीच किसी प्रकार की संधि या सहयोग नहीं चाह पाती।

उसे अपने मां–पिता के अमिनयों से जबरदस्ती घर में करीने को बिछाए रखने के बनावटीपन से ऊब छूटती है–उसे समझ नहीं आता–कोई इस हालत में कैसे जी सकता है कोई कैसे हंस–हंस कर अतिथियों का सहज ढंग से स्वागत कर सकता है जबकि मनो में वितृष्णा का ठंडापन और सम्बधों की सपाटता फैली हो। स्वाति सोचती है आदमी को हर हालत में मुक्त, स्वतंत्र स्तरों पर जीना चाहिए। महज़ कुछ भ्रमों को बनाए रखने के मोह में सारी जिंदगी को जकड़ने में, मानसिक कैद की यंत्रणा भुगतते हुए काट दी–यह आदर्श स्वाति का युवा स्वातंत्र्य–बोध स्वीकार नहीं पाता– 'ऐसा नहीं होना चाहिए। किसी गलती को सहारा दिया जा रहा है। अनीति को दिन के प्रकाश में भले मौन रखकर अप्रत्यक्ष तौर पर बचा लिया जाय, लेकिन किसी मिथ्या तहजीब को इस तरह से कायम रखना भविष्य के लिए खतरनाक हो सकता है।

वह चाहती है, मां को इस खामोश मगर दमघोट सुरुचि करीने भरे सिल–सिलों को तोड़ देना चाहिए। उसे लगता है मां चुप रहकर मां और पत्नी का अभिनय करती हुई लगातार गलत को प्रश्रय दे रही है, इसका साफ अर्थ यह है कि उसके अंदर कोई सत्याग्रह नहीं....परिवार को पाप की बुनियाद पर कस देना कहां का कर्त्तव्य है। स्वाति सारे तथाकथित कर्त्तव्यों, आदर्षों की परवाह किए बिना सिर्फ सही ढंग से, सम्पूर्ण अंतरगत से जीवन को, जीने को महत्व देती है। वह चाहती है मां अपनी स्थिति से विद्रोह करे, अन्याय का प्रतिकार करे, घर में, सम्बन्धों में जबरदस्ती की चिपकाई और, प्रदर्शित आत्मीयता के भ्रम से मुक्ति पा ले फिर चाहे परिणाम कैसा भी हो संधि का या विच्छेद का इस खतरे का सामना करना ही होगा।

पिता द्वारा उस दूसरी औरत को लाने की खबर सुनकर स्वाति अपने को एक अनजाने खतरे से त्रस्त पाती है, एक बेबस खौफ की गिरफ्त में स्वाति का आकुल मन कसा रहा। रात भर कसा रहा।

स्वाति देखती है, सारा घर खामोशी से सब झेल रहा है। कहीं कोई सर–सराहट नहीं, मुक्ति पाने की सुगबुगाहट नहीं। स्वाति सिर्फ तकिए को भींच कर रो सकती है, पर उसे रोना भी नहीं आता। कमरे से मां का स्वर सुनती है। जिसमें पिता द्वारा उस औरत के घर में लाने का प्रतिकार है, स्वाति के नाम पर। कि स्वाति अब सयानी हो चुकी है और स्वाति यह सुनकर तड़प उठती है, अगर उन बातों को जान लेना ही किसी युवा लड़की की बरबादी है जिन्हें उसके मां–बाप चुराना चाहे तो मैं कभी की बरबाद हो गई। चहलकदमी करते हुए उसने दांत पीसे। दरवाजे की दरारों में से वह मां को पति के पांव से लिपट जाने के अपराध में एक शक्तिमान धक्का खाते हुए देखती है और 'स्वाति का मन खौल जाता है– दरारों को चीर देने का उन्माद उसमें जन्मा। उसे मां बहुत अपाहिज और मूर्ख लगती है– राजे ऐसा करता तो मैं उसको मार डालती। कोई मेरे स्वर्गिक सुखों की सीढ़ी तोड़े और मैं चुपचाप उसे सह लूं। यहां आकर स्वाति की, भीतर की सारी लड़ाई स्त्री की दासता से मुक्ति और अपने अधिकारों की मांग करने की स्वतंत्रता से जुड़ जाती है।

इस देश की स्त्री संस्कारों और सामाजिक आदर्शों की खातिर बहुत कुछ सहती है– यंत्रणाएं मूक भाव से झेलती है लेकिन आधुनिक स्वातंत्र्य–बोध स्त्री की अपने ही मन की इस पराधीनता को, भलेही उसमें सहिष्णुता का गौरव चिपका हो, अस्वीकार करता है। यह सहे जाना त्याग का आदर्श नहीं है, अपने आपको मारना है, आत्महत्या है और स्वाति के माध्यम से कहानीकार इस आत्महत्या का विरोधी है। इस प्रकार 'कलह' कहानी आदर्शों और रीतियों के नाम पर, और उसमें भी अधिक भारतीय स्त्री की अपनी ही संस्कारी जकड़नों में कैद, यंत्रणा से मुक्ति की तिलमिलाहट की कहानी बन जाती है।

निष्कर्ष:

इसी प्रकार 'खलनायिका और बारूद के फूल' में एक साधारण प्रेम–कहानी के माध्यम से कहानीकार विद्रूपता के हलके स्पर्शों के साथ उस परिणति को रुपायित करता है जो प्रेम के हजार स्वप्नों को पूरा न होने की स्थिति में अपने को प्लेटोनिक प्यार के गौरव से जोड़कर झूठी तसल्ली दे लेती है। कहानी में प्रेमिका पिता की इच्छा का विद्रोह नहीं कर सकती है और प्रेमी का समस्त साहस कुंठित रह गया जिससे उसका एक विद्रोही की तरह समस्त अवरोधों को ध्वस्त कर देने का निश्चय था। विवाह के दिन प्रेमिका का आंसुओं से लिपटे स्वर में यह कहना मुझे गलत मत समझना। मेरा प्रेम आत्मा का है, वह मरते दम तक क्या, जन्म जन्मान्तर तक जीवित रहेगा। और कि उसके अलावा किसी को वह अपना हृदय नहीं दे सकती भले ही तन देना पड़े, कि उसके सारे प्रेम–पत्र वापस कर दिए जाएं या जला दिए जाए। उसे तल्खी के बावजूद हंसी दिला देता है यानी यहां आकर उसकी सारी आत्मीयता प्रेमिका के इन शब्दों से सपाट हो गई है। उसके विद्रोह की आग अंदर ही अंदर धुँआ देती रहती है और वह अपनी प्रेम कहानी की नायिका को खलनायिका के रूप में देखने लगता है– उसका यह बोध बहुत तीखा हो उठता है। फटते हुए बारूद की तरह। कायरता और भावुकता का दूसरा नाम उसकी प्रेमिका ने आत्मा का प्रेम दे दिया और नायक कडुवी हंसी से देखता रहा।

1. वातायन अगस्त– 72, पृ0 10
2. वही , पृ0 14
3. वातायन अगस्त– 72, पृ0 14
4. वातायन अगस्त– 72, पृ0 16
5. वातायन अगस्त– 72, पृ0 15
6. वही ।
7. वही पृं0...21
8. वातायन, अगस्त, 72– पृ0 23
9. वही , पृ0...22
10. वही , पृ0 ...25
11. वही, पृ0...26
12. कलह – फेंस के इधर और उधर, पृ0...26
13. वही, पृ0...26
14. वही , पृ0...27
15. कलह : फेंस के इधर और उधर, पृ0...27
16. वही , पृ0...30
17. खलनायिका और बारूद के फूल : फेंस के इधर और उधर